Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
(A National Multidisciplinary bi-lingual Quarterly Double Blind Open Access Peer Reviewed Refereed Journal)
ISSN : 2231–167X (Print), Impact Factor: (Cosmos: 7.866 & I2OR: 5.675) Volume 16, No. 03, July-September, 2026, pp. 38-42

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी चिन्तन

डॉ. वर्षा सागरकर[1] एवं रेनु कुमारी[2*]

[1]शोध निर्देशक एवं सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल।
[2]शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल।

[*]Corresponding Author: rohinisingh627@gmail.com

***Citation**: सागरकर, वर्षा एवं कुमारी, रेनु (2026). पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी चिन्तन. Journal of Modern Management & Entrepreneurship, 16(03), 38–42. https://doi.org/10.62823/JMME/16.03.9242*

ABSTRACT

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे, जिनके जीवन और चिंतन में आध्यात्मिक चेतना तथा राजनीतिक व्यवहार का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उनका व्यक्तित्व अत्यंत सरल, संयमित और सादगीपूर्ण था, किंतु उनके विचार गहन, व्यावहारिक और राष्ट्रहित से ओतप्रोत थे। वे केवल एक राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, बल्कि संगठनकर्ता, कुशल वक्ता, समाज–चिंतक, अर्थ–विचारक, शिक्षाविद्, लेखक और पत्रकार के रूप में भी उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में प्रभावशाली विचारक के रूप मं उपाध्याय ने राष्ट्र की अवधारणा की कल्पना की थी। राष्ट्र की उनकी अवधारणा न केवल भौगोलिक सीमाओं से परे जाती है, बल्कि दार्शनिक और वैचारिक ढांचे को भी शामिल करती है। इनका राष्ट्रवाद समाजिक एकजुटता, सांस्कृतिक पहचान और सामूहिक चेतना के महत्व पर जोर देता है। उपाध्याय का राष्ट्रवाद उनके एकात्मक मानवाद की अवधारणा पर केन्द्रित है उनका मानना था कि एक राष्ट्र को व्यक्ति स्वतंत्रता और समुदाय की भलाई के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करना चाहिए। उपाध्याय ने व्यक्तियों के बीच समाजिक सदभाव और सहयोग के महत्व जोर देते हुए कहा कि एक राष्ट्र को सामूहि प्रगति और विकास के लिए प्रयास करना चाहिए।

***शब्दकोशः** राष्ट्रवादी चिंतक, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, नई रणनीति, प्रजातंत्र, मानववाद, राजनैतिक आध्यात्मीकरण, एकात्मता, द्विसंस्कृतिवाद, राष्ट्रजीवन, सामाजिक मूल्य।*

प्रस्तावना

शाब्दिक तौर पर राष्ट्रवाद एक आधुनिक 'पद' है। ऐसा माना जाता है कि आधुनिक राष्ट्र–राज्य की अवधारणा फ्रांस की क्रांति (1789) के बाद विकसित हुई। सामाजिक विकास या राजनैतिक सिद्धांत के तौर पर राष्ट्रवाद की संकल्पना आधुनिकता की ऐतिहासिक व्याख्या हो सकती है, लेकिन मूल स्वीकार्य बात यह है कि राष्ट्रों का अस्तित्व प्राचीन काल से था। राष्ट्रवाद पर अधिक लिखने वाले राजनैतिक विचारक एंथोनी डी. स्मिथ ने राष्ट्र को परिभाषित किया है कि– 'मानव समुदाय जिनकी अपनी मातृभूमि हो, जिनकी समान गाथाएं और इतिहास एक जैसा हो, समान संस्कृति हो, अर्थव्यवस्था एक हो और सभी सदस्यों के अधिकार व कर्तव्य समान हों।' रूपर्ट इमर्सन के अनुसार राष्ट्रवाद– 'एक संबद्ध समुदाय जिसकी विरासत समान हों और जो एक जैसा

[*] *Copyright © 2026 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

भविष्य पसंद करते हैं।' राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर 'गुरूजी' ने राष्ट्र–जन के विभिन्न घटकों का उल्लेख किया है कि– समान इतिहास, समान पंरपरा, शत्रु–मित्राता का भाव समान, भविष्य की आकांक्षा समान ऐसी भूमि का पुत्रा संबंध समाज राष्ट्र कहलाता है।

भारतीय परिपेक्ष्य में राष्ट्रवाद

इतिहासकार विसेंट स्मिथ लिखते हैं, 'बिना किसी संदेह के, भारत के पास अन्तर्निहित मूलभूत एकता है, जो राजनैतिक प्रभुता या भौगोलिक विगलन से ज्यादा शक्तिशाली है। यह एकता जाति, धर्म, वंश, रंग, भाषा व रीति–रिवाज की तमाम विभिन्नताओं को पार करती है। यह वेद काल से ही एक पवित्रा घोषणा है– 'पृथिव्यै समुद्र पर्यन्तायाः एकराट।' यह अन्तर्निहित सांस्कृतिक एकता, हमारी राष्ट्रीय पहचान की सभ्यतामूलक आधार के साथ–साथ चरम जीवन मूल्य हैं। यह हमारे जीवन शैली की व्याख्या करते हैं और हमारी राष्ट्रीयता की आधारशिला है। अतएव राष्ट्रवाद, जिसका हम उद्घोष करते हैं, वास्तव में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है। हमारी संस्कृति हमारे अस्तित्व को परिभाषित करती है, जैसा कि दीनदयाल जी ने कहा था, 'हमारी राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक सोच का आधार हमारी संस्कृति ही है।

उपाध्याय जी का राष्ट्रवाद

उपाध्याय का राष्ट्रवाद उनके एकात्मक मानवाद की अवधारणा पर केन्द्रित है। उनका मानना था कि एक राष्ट्र को व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समुदाय की भलाई के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करना चाहिए । उपाध्याय ने व्यक्तियों के बीच सामाजिक सदभाव और सहयोग के महत्व पर जोर देते हुए कहा कि एक राष्ट्र को समूहिक प्रगति और विकास के लिए प्रयास करना चाहिए।

इसके अलावा उपाध्याय ने राष्ट्र के लोगों के बीच पहचान और चेतना की भावना विकसित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। उनका मानना था कि पहचान की यह भावना पांरपरिक मूल्यों, सांस्कृतिक विरासत और साझां भविष्य के विश्वास पर आधारित होनी चाहिए। उपाध्याय का मनना था कि एक महबूत राष्ट्रीय पहचान एकता को बढावा देगी और विभाजनकारी एवं विखडनकारी ताकतों को रोकेगी।

उपध्याय के राष्ट्रवाद में आर्थिक विकास और आत्मनिर्भरता के महत्व पर जोर दिया गयाा, उनका मानना था कि राष्ट्र को आर्थिक रूप से स्वतंत्रत होने अपने लोगों की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होने का प्रयास करना चाहिए। उपाध्याय ने व्यक्तियों और समुदायों को सशक्त बनाने और राष्ट्रीय प्रगति हासिल करने के साधन के रूप में आर्थिक आत्मनिर्भरता की वकालत कि।

राष्ट्र की संकल्पना प्रस्तुत करते समय दीनदयाल का मानना है कि राष्ट्र में चार आवश्यक धटक होते है। सबसे पहले राष्ट्र को भूमि और लोगों की आवश्यकता होती है, जिसे हम देश कहते है। यह आवश्यक तत्व एक भौगोलिक सीमा और उसके भीतर रहने वाले लोगों के लिए पहचान प्रदान करता है। दूसरे, राष्ट्र को सामूहिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता होती है, जिसमें सभी की इच्छा और आकांक्षाए शामिल हो। यह सामूहिक इच्छाशक्ति देश के लोगों को एकजुट करती है, और उन्हें एक समान लक्ष्य की ओर ले जाती है।

राष्ट्र का तीसरा धटक नियमों, सिद्वांतों अथवा संविधान की एक प्रणाली है। दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा निहित है। इसलिए धर्म को संवैधानिक प्रणाली के निर्मा और कार्यन्वयन का मार्गदर्शन करना चाहिए। ऐसा इसलिए भी होना चाहिए, क्योंकि मानव व्यवहार धर्म, धार्मिक, न्याय और सत्य के सिद्वांत नियंत्रित करते है। राष्ट्र की वयवस्था में धर्म को शामिल करके उपाध्याय ने एक न्यायपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण समाज के स्थापना की मांग की। राष्ट्र में जीवन के ऐसे आदर्श की आवश्यकता होती है, जो उसकी सामूहिक दृष्टि और आकांक्षओ का मार्गदर्शन करते हो। दीनदयाल उपाध्याय ने देश के लोगों से जुडे सांस्कृतिक मूल्यो, परंपराओं और सिद्वांतों को बनाए रखने के महत्व को बताया। ये आदर्श नैतिक मूल्य

आचरण एवं व्यवहार के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते है, जिससे राष्ट्र की पहचान और एकता की भावना को बढावा मिलता है।

उपाध्याय के अनुसार राष्ट्र का चौथा धटक मातृभूमि के रूप में है। उन्होंने कहा कि राष्ट्र तब बनता है, जब एक लक्ष्य, एक आदर्श, एक मिशन के साथ रहता है। व्यक्तियों का यह समूह भूमि के एक विशेष टुक्डे को मातृभूमि के रूप मे देखता है। यदि आदर्श और मातृभूमि दोनों में से एक भी नहीं है तो कोई राष्ट्र नहीं है। दीनदयाल उपाध्याय की राष्ट्रीयता की अवधारणा एकता, सुसंगतता और साझाा नियति के महत्व पर जोर देती है। यह एक राष्ट्र के भीतर व्यक्तियों को उनकी सामूहि आकांक्षाओं की पहचान करने और साझाा भविष्ट की ओर देखने के लिए प्रोत्साहित करती है । उनके विचार भारत और अन्य देशों में अध्ययन का विषय है, जो राष्ट्रवाद की प्रकृति और राष्ट्र की पहचान को आकार देने में इसके महत्व के बारे में बहुमूल्य अंतदृष्टि प्रदान करते है।

अध्ययन का उद्देश्य

- दीनदयाल के चिन्त का अध्ययन करना तथा वर्तमान संदर्भ में उनकें विचारों की उपयोगीता का विश्लेषण करना।
- राष्ट्रवाद की प्रमुख अवधारणाओं का अध्ययन करना।
- दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का तथ्यात्मक अध्ययन करना एवं उनका यथावत प्रस्तुतीकरण करना।

परिकल्पना

- दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन शाश्वत विचारधारा से जुड़ता है। इसके आधार पर उन्होंने राष्ट्रभाव को समझने का प्रयास किया है।
- दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन एकात्म मानव दर्शन शाश्वत विचारों पर आधारित है

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध–प्रबंध ऐतिहासिक, विवरणात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धतियों पर आधारित है। इस शोध–कार्य में आँकड़ा संग्रहण हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन शाश्वत भारतीय विचार परंपरा से गहराई से जुड़ा हुआ है। उन्होंने इसी आधार पर राष्ट्रभाव की समग्र व्याख्या करने का प्रयास किया। उनका चिंतन केवल समस्याओं की पहचान तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने राष्ट्रीय जीवन से जुड़ी जटिलताओं के समाधान भी प्रस्तुत किए। अन्य विचारकों की भाँति दीनदयाल जी ने किसी पृथक 'वाद' की स्थापना नहीं की। उनके द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन तथा अन्त्योदय जैसे सिद्धांत किसी संकीर्ण वैचारिक ढाँचे में सीमित नहीं किए जा सकते।

एकात्म मानव दर्शन मूलतः एक जीवन–दृष्टि है, जो मानव को उसकी सांस्कृतिक जड़ों और ऋषि परंपरा से जोड़ता है। इस दर्शन का केंद्र न तो व्यक्ति मात्र है और न ही सत्ता, बल्कि इसमें शरीर, मन, बुद्धि और आत्माकृचारों की समान महत्ता को स्वीकार किया गया है। दीनदयाल जी के अनुसार प्रत्येक जीव में आत्मा का वास होता है, जिसे परमात्मा का अंश माना गया है। इसी आत्मिक समानता के आधार पर समाज में समरसता और सह–अस्तित्व की भावना विकसित होती है, जहाँ भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

उनका मानना था कि व्यक्ति का निजी हित स्वाभाविक हो सकता है, परंतु वही जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं है। उपभोगवादी प्रवृत्तियाँ न तो समाज का कल्याण कर सकती हैं और न ही मानव को वास्तविक संतोष प्रदान कर सकती हैं। भौतिक सुखों की अंधी दौड़ में मन कभी तृप्त नहीं होता। मानव जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक उपलब्धियाँ नहीं, बल्कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के संतुलन में निहित है।

दीनदयाल जी के अनुसार प्रत्येक कार्य धर्म से प्रेरित होना चाहिए। लाभ की आकांक्षा अनुचित नहीं है, किंतु वह तभी सार्थक है जब उसमें सर्वहित निहित हो। यदि समाज के कल्याण के लिए व्यक्तिगत हित का त्याग आवश्यक हो, तो वह स्वीकार्य होना चाहिए; और जब राष्ट्रहित की बात हो, तब समाजिक हित भी पीछे रखा जा सकता है। राष्ट्रवाद की यही भावना प्रत्येक नागरिक के अंतर्मन में विकसित होनी चाहिए।

एकात्म मानव दर्शन शाश्वत भारतीय मूल्यों पर आधारित है। दीनदयाल उपाध्याय ने जीवन को समग्रता में देखने की रचनात्मक दृष्टि प्रस्तुत की और विदेशी विचारधाराओं को सार्वभौमिक मानने से इनकार किया। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति संपूर्ण जीवन और सृष्टि को एकीकृत दृष्टि से देखती है। यह संस्कृति खंडों में नहीं, बल्कि समग्रता में विचार करती है। विविधताओं के बीच अंतर्निहित एकता को पहचानना, परस्पर पूरकता को स्वीकार करना और सामंजस्य का विकास करना ही संस्कृति का मूल स्वरूप है।

भारतीय संस्कृति में निहित एकात्म मानव दर्शन यह स्वीकार करता है कि मानव केवल एक भौतिक इकाई नहीं, बल्कि शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समन्वित रूप है। उसकी भूमिका केवल स्वयं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समाज और समस्त राष्ट्र तक विस्तृत होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव दर्शन, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन, प्रथम संस्करण
2. उपाध्याय, दीनदयाल, जगद्गुरु श ंकराचार्य, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018 .
3. उपाध्याय, दीनदयाल, राष्ट्र चिन्तन, राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ आवृत्ति, वर्ष प्रतिपदा, 2029
4. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानव दर्शन, दीनदयाल गुरुजी, ठेंगड़ी, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुन्ज, नई दिल्ली, 2017.
5. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद, भारतीय जनता पार्टी, मध्यप्रदेश, 1985
6. उपाध्याय, दीनदयाल, पॉलिटिकल डायरी, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991
7. उपाध्याय, दीनयाल, एकात्म मानवदर्शन– विवेचन, सिद्धान्त एवं तत्व मीमांसा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
8. कुलकर्णी, शरद आनन्द, पं. दीनदयाल विचार दर्शन, खण्ड–4,सुरुचि प्रकाशन,नई दिल्ली,
9. किशोर, नवल, मानववाद और साहित्य 15. केलकर, भालचन्द्र कृष्णाजी, पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–3 सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1960
10. केलकर, श्री भा.कृ., राजनीतिक चिन्तन (दीनदयाल जी से उनके अनुयायियों को उत्तराधिकार में मिली राजनैतिक पद्धति), सुरुचि प्रकाशन झण्डेवाला, नई दिल्ली, 2014
11. गुप्त, मन्मथनाथ, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस,1961
12. गोलवलकर, माधवराव सदाशिवराव, श्री गुरुजी : समग्र दर्शन (सातों खण्ड), नागपुर भारतीय विचार साधना, ध्येय दर्शन, लखनऊ, भारतीय राष्ट्रधर्म प्रकाशन, 1946,
13. गोयनका, कमल किशोर, पं. दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्ति दर्शन, नई दिल्ली, दीनदयाल शोध संस्थान, 1972
14. गौड़, तेज सिंह, जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास, मद्रास, जयध्वज प्रकाशन समिति
15. चन्द्र, प्रकाश, पॉलिटिकल, फिलॉसफी ऑफ एम.एन. राय, मेरठ, स्वरूप एण्ड संस, 1995
16. चतुर्वेदी, मुनिन्द्र मोहन, पं. दीनदयाल उपाध्याय की समाज विज्ञान को देन, इटावा, शोध ग्रन्थ, 1988

17. जोग, श्री बा.ना., राजनीति राष्ट्र के लिये (राज्य और राजनीति साध्य नहीं, मात्र साधक है। साध्य है राष्ट्र का परम वैभव), सुरुचि प्रकाशन झण्डेवाला, नई दिल्ली, 2014

18. ठेगड़ी, श्री दत्तोपत्त, तत्व जिज्ञासा (अनुव्रती 6 खंडों की प्रस्तावना स्वरूप स्वतंत्र विवेचन), सुरुचि प्रकाशन झण्डेवा।

❑❑❑